ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; SP7: 90-93

श्यामल चौधरी
हिंदी विभाग, ति0 मा0 भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत।

Correspondence
श्यामल चौधरी
हिंदी विभाग, ति0 मा0 भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत।

(Special Issue-7)
"International Conference on Science and Education: Problems, Solutions and Perspectives"
(3rd June, 2019)

इलारानी सिंह का हिंदी साहित्य के विकास में अवदान

श्यामल चौधरी

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के विकास में अनेकानेक लेखकों ने अपनी–अपनी रचना से योगदान दिये है जिसमे इलारानी सिंह का भी योगदान अविश्मरणीय है। इलारानी सिंह का जन्म प्रबोध नारायण सिंह एवं विंदा देवी के पुत्री के रूप में 1 जुलाई 1945 को सहरसा जिला का सोनवर्षा प्रखंड में सहमौर गॉव में हुआ था। अक्टूबर 1947 में माता का निधन के बाद उनका पालन–पोषण दादी ने किया। कवयित्री इलारानी सिंह ने अपनी माता के आकस्मिक निधन की चर्चा अपनी एक कविता 'आत्मा का अमरत्व' में किया है–

"मैंने देखा–
लावण्यमयी सुदर्शना अपनी माँ को
जो अपनी अल्हड़ जवानी में ही
गर्भस्थ शिशु की अकाल मृत्यु
और उसकी विषाक्तता से झुलसकर खाक हो गयी थी।"[1]

इलारानी सिंह के शैशवकाल के संदर्भ में कहीं लिखित प्रमाण नहीं मिलते हैं। प्रो. सुशील कुमार धर ने इलारानी के शैशवकाल के संबंध में उनके मरणोपरांत लिखा है– "वह नन्हीं सी' गोरी–गोरी गुड़िया–सी, दुबली–पतली लड़की जिसे उसके मामा लोग दो उंगलियों पर नचा–नचाकर उसके दुर्बल होने का एहसास दिलाते हुए चिढ़ाते थे और वह 'ऊँ–हूँ–हूँ' करती हुई भाग कर मामा की गोद में आश्रय लेकर अपने निर्बल हाथों से मामा के गालों पर अनाप–शनाप थप्पड़ और घूसे मारती और फिर हँसती हुई मामा के गालों को ही चूमने लगती।"[2] इसी से इलारानी के शैशव का परिचय मिलता है। उनके शैशव काल का और कोई स्रोत उपलब्ध नहीं है।

इलारानी सिंह की प्रारंभिक शिक्षा–दीक्षा ग्रामीण परिवेश से प्रारंभ होकर महानगरीय परिवेश में परिणति पर पहुँची। उन्होंने एडमिशन परीक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से 1959, आई.ए. कलकत्ता विश्वविद्यालय से 1962, बी.ए. हिन्दी प्रतिष्ठा, भागलपुर विश्वविद्यालय से 1964 और एम.ए., सागर विश्वविद्यालय से 1966 में पास किया। यह उनकी मातृभाषानुराग का ही प्रमाण है कि उन्होंने पुनः बिहार विश्वविद्यालय से मैथिली में एम. ए. 1967 में किया।

प्रो. राजश्री शुक्ला प्रो. इलारानी सिंह के सूरजमल जालान गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता में बी.ए. आनर्स की छात्रा थी। प्रो. शुक्ला इलारानी के सफल अध्यापन के विषय में उल्लेख करती हई कहती हैं– "जालान गर्ल्स कॉलेज में जब मैं बी. ए. ऑनर्स की पढ़ाई कर रही थी, तो वे हमें भाषा–विज्ञान पढ़ाने आई थीं। उनकी अनेक ऊँची डिग्रियों एवं प्रखर पांडित्य के विषय में सुन–सुनकर हम छात्राएँ कुछ आतंकित सी थीं, परंतु उन्हें देखकर, जानकर हमें एक सुखद आश्चर्य हुआ। उनकी सरलता, सौजन्य तथा अपनेपन ने जल्दी ही उन्हें लोकप्रिय बना दिया। उनके इसी अपनत्व ने मुझ जैसी संकोची छात्रा को भी अपने वश में कर लिया था। मन के भीतर तक की थाह ले लेने वाली उनकी तलस्पर्शिनी दृष्टि के सम्मुख मन की परतें स्वतः ही खुलती जाती थीं। हम अपनी जटिल समस्यायें लेकर उनके पास जाते और वे अपने त्वरित, बुद्धि, पैनी दृष्टि और सहज मुस्कान से उसका शीघ्र ही समाधान कर देतीं. . . ।"[3]

प्रोफेसर इलारानी सिंह का विवाह प्रोफेसर प्रेम शंकर सिंह, मैथिली विभागाध्यक्ष, टी.एन.बी. कॉलेज, भागलपुर के साथ 18 जून, 1967 में हुआ था। उस समय इलारानी सूरजमल जालान गर्ल्स कॉलेज, कलकत्ता में हिन्दी की प्राध्यापिका थीं। उनका दाम्पत्य जीवन सिर्फ 14–15 वर्षों तक चला। उसके बाद उनका परिणय –सूत्र खंडित हो गया। उनके खंडित दाम्पत्य से दुखी हो डॉ. सुकीर्ति गुप्ता का कहना है – "इला ने सागर तट पर बालू के घरौंदे बनाये, पर उसकी मुट्ठी से सिकता कण भरभड़ा कर बह जाते। अदम्य साहस था– परिवार की मर्यादा के लिए बलिदान पर उसकी कशक अंतर्मन में थी। विवाह भी तो सफल नहीं हुआ। लम्बे समय तक पत्नी, माँ और अपनी अस्मिता को संतुलित और मर्यादित रूप देने की चेष्टा की, पर असफल ही रही। अपनी अस्मिता के अपमान को इला नकार नहीं पायी और पत्नी का बंधन त्याग सिर्फ माँ के रूप में अपनी तीन बच्चों को साथ लेकर शेष जीवन–यात्रा तय करने के लिए महानगर चली गयी।"[4] संतान के भविष्य के प्रति वह सचेष्टा रही थी। उनकी एक कविता में यह भाव स्पष्ट दिखता है –

"बेटी की अनदेखी होम वर्क की डायरी
छोटे की फरमाइशों की लिस्ट,
बड़े को अधलिखी चिट्ठी,
माँ की देर से पहुँचने की नाराजगी।"[5]

इलारानी की ख्याति से अभिभूत उनके एक अत्यंत निकट के संबंधी ने यह कहते हुए उनकी प्रशंसा की है– "इला जी ने एक कुशल प्राध्यापिका के रूप में भागलपुर एवं कलकत्ता विश्वविद्यालयान्तर्गत ख्याति अर्जित की थीं। अपने सहज एवं मृदुल स्वभाव के कारण वे छात्र–छात्राओं में अत्यधिक चर्चित थीं।"[6]

प्रो. इलारानी अपने व्यक्तित्व की गरिमा को कभी खण्डित नहीं होने दिया। इस बात को स्पष्ट करते हुए श्री राम आह्लाद चौधरी ने कहा है– "दीदी प्राध्यापाकी दुनिया के छल–प्रपंच, भेद–भाव, ईर्ष्या–द्वेष से दूर रहकर, शिष्यों के बीच अकूत प्यार बाँटने में लगीं थीं। शायद ही कोई उनका ऐसा 'भदेड़न–खदेड़न' शिष्य हो जिस पर उनके व्यक्तित्व की छाप न पड़ी हो। वस्तुतः वे भारतीय गुरू परंपरा में आलोक स्तंभ थीं। वे लोकप्रिय और निष्ठावान प्राध्यापिका थीं और उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता, जन–सम्बद्धता तथा उनके अधूरे कार्य हमारे लिए चुनौती हैं। सच तो यह है कि आचार–विचार में दीदी जितनी सरल और निश्छल थीं, उतनी ही वैचारिक जमीन पर प्रतिबद्ध ।"[7]

वे हमेशा चाहती थीं कि विद्यार्थी पढ़ाई को पूरी गंभीरता से लें, किताबों की दुनिया के बाहर भी हस्तक्षेप करें। इसके लिए प्रेरणा देती थीं। क्लास में अनुशासन पसन्द करती थीं लेकिन विद्यार्थियों की छोटी–सी–छोटी समस्याओं को गंभीरता से सुनतीं और यथासंभव उन्हें पूरा करने का प्रयास करतीं। उनकी डॉट और फटकार में स्नेह भरा रहता था और छात्रों के उत्कर्ष की कामना छिपी रहती थीं।

इलारानी सिंह, मैथिली विभाग, तेज नारायण बनैली महाविद्यालय से दिनांक 09.04.1981 को पद त्यागकर 10.04.1981 से सेठ आनन्द राम जयपुरिया कॉलेज कोलकाता में हिन्दी की प्राध्यापिका बनीं। 1981 से पूर्व उनकी हिन्दी में मात्र एक काव्य–संग्रह 'रयि' प्रकाशित हुई थी। 'रयि' के पाश्चात् 'वात्या' काव्य–संग्रह के प्रकाशन के मध्य लगभग ग्यारह वर्षो तक उनकी साहित्यिक गतिविधि शून्य रही। हो सकता है कि इसके पीछे उनके विच्छेदित गार्हस्थ्य–दायित्व की व्यस्तता रही होगी। जिस साहित्यकार की सर्जनात्मक गतिविधि अनवरत चलती रही हो और हठात् बीच में ही ठमक जाए, यह एक आश्चर्य का विषय है। साथ ही, साहित्यकार की मानसिक स्थिति का अनुसंधान भी एक विषय बनकर सामने खड़ा हो जाता है। सोचनीय विषय है कि उनके जीवन में ऐसी कौन–सी दुःखद परिस्थिति आई जिससे साहित्य जगत् को इतनी बड़ी क्षति हुई। कैंसर से पीड़ित, मृत्यु के पाँच–छः वर्ष पूर्व उनके दो काव्य संग्रह, एक मौलिक 'फूटते हैं अंकुर' और बांग्ला के साहित्यकार अंजन सेन की 'तीन विश्वे दिन रात्रि' का हिन्दी रूपान्तरण 'तीन विश्वे दिन रात्रि' का हिंदी रूपांतरण 'तीन विश्वों में दिन–रात' प्रकाशित हुआ।

कवयित्री इलारानी सिंह का प्रथम हिंदी काव्य–संग्रह 'रयि' में एकतीस पद संकलित है। इस संग्रह का एकतीसवाँ पद 'रयि' शीर्षकीय (इपोनिमस) पद है। कवयित्री 'रयि' के मोहक दीप्त प्रकाश के प्रसार से अनुप्राणित लगती है। सृष्टि के कण–कण 'रयि' के प्राणमय दीप्ति कठिन है। उपनिषद् में 'रयि' शब्द सविता के सदृश्य वह्वर्थी है–

"आदित्यो हवै प्राणो रयिरेव चंद्रमाः।
रयिर्वा एतत्सर्व चन्मूर्त्त च
तस्मान्मूर्त्तिरेव रयिः।"[8]

इलारानी सिंह की दूसरी काव्यांजलि 'वात्या' लोक–गीत साशा लघुकथा विदग्धा, रामायण–प्रिया, भारत–सेविका एंव विद्वज्जन–पूजिता जाया देवी को समर्पित है –

"लोक–गीत लघुकथा–विदग्धा,
वेद–भक्ति–मय, गीता लुब्धा,
रामायण–प्रिय, भारत–सेवी,
विवुध–पूजीता जाया देवी ।"[9]

कवयित्री का यह काव्य–संग्रह 'वात्या' 1984 में प्रकाशित हुआ था। इनका दाम्पत्य–जीवन आठवें दशक के अन्त में खण्डित हुआ और मृत्यु 1995 में। इस दशकाधिक वर्षों की अवधि में उनकी देह–माचन आशा–लतिका के भार से जर्जरित हो गया। निश्चित रूप से कवयित्री अपने प्रत्येक पद–रचना के अन्त में तिथि अंकित करनी थी; इसीलिए, क्योंकि किसी भी रचना का विश्लेषण उस काल की परिस्थिति से विशेष स्पष्ट होता है, वैसे कविता का भाव निर्विवाद रूप से कवयित्री के खण्डित जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त कर रही हैं।

'वात्या' काव्य–संग्रह में कुल बारह कविताएँ संकलित हैं– शंका, सामंजस्य, मेष कुमारी, पतन, लतिका, सूअर, आकाश, दीवार और पोस्टर, आत्मा का अमरत्व, अद्वैतत्व, नेताजी एंव अन्तिम 'वात्या'। इसी कविता के शीर्षक पर इस काव्य–संग्रह का नामांकरण किया गया है। भावों, विचारों, अनुभूतियों, संवेगों एंव अभिज्ञाओं की दुनिवार है–वात्या। ऐसी प्रतीत होता है कि यह वात्या सम्पूर्ण धरा को ध्वस्त कर देगी किन्तु किसी की 'अस्मिता भरी सुरभि' किसी के 'ऊर्जा–किसलय' उस धरा को धन्य कर देते हैं –

"किन्तु
तुम्हारी 'अस्मिता–भरी सुरभि' की व्याप्ति
और महाचिति का मन्द्र अनुरणन
सुरक्षा कवच बन
तरी को आवृत कर लेते हैं।"[10]

कवयित्री 'आत्मा का अमरत्व' शीर्षक कविता में मृत्यु के अन्धकार में अमरत्व के प्रकाश का दर्शन करना चाहती हैं अर्थात् प्रकाशहीनता में प्रकाश। इस कविता में कतिपय घटनाओं द्वारा उपर्युक्त बातें अभिव्यक्त की गई है–

"आत्मा के अमरत्व की सुरभि
छिड़की हुई है सर्वत्र–

इत्र की भाँति।"[11]

'दीवार और पोस्टर' शीषर्क कविता में मन–भित्ति पर परम्परा के पोस्टर का भाव है। मन की भित्ति पर समाज ने साट दिये परम्परा के पोस्टर। कवयित्री की लगभग सारी ही कविताएँ यह 'आत्म कथात्मक' मालूम होती हैं। मन की पुती साफ दीवार पर महान समाज सेवियों ने बहुसूत्री कार्यक्रम द्वारा समाज के सुखमय और उन्नयन के लिए हर्षनाद कर पोस्टर चिपकाया था। नव–जागरण के उस क्षण (काल) स्वरूप की सीमा को विस्मृत कर मन–भित्ति ने पोस्टर के अर्थ को आत्मसात किया था और पोस्टर सुचिन्त्य, जीवन की चिरंतन गति को विस्मृत करता गया। बीसवीं शदी को मानव अर्थहीन भ्रान्तियों में भटकता क्रमशः होता गया। आदिम युग की बर्बरता का प्रतीक–नोचता, खसोटता, काटता, पीटता रक्त लोलुप व्याध सदृश। इस कविता में पोस्टर की बर्बरता का वर्णन है –

"पोस्टर की दीमक से
भित्ति का होता रहा क्षय,
बढ़ता ही गया पवित्र भूमि में
क्रूर संत्रास और दुरभिसंधिमय अभिचार!
फिर भी भित्ति सहती ही रही,
अपने उज्जवल स्वरूप के उद्घाटन का लोभ था!"[12]

मिलन के पहले का क्षण – 'रीता क्षण' है। प्रतीक्षा की घुटन, प्रतीक्षा की भींगी अग्नि और रेगिस्तानी बवंडर–सा निकलता जा रहा प्रतीक्षा का ही रीता–क्षण, यथा –

"मन को मसलकर
रेगिस्तानी बवण्डर–सा
सन–सन करता
निकलता जा रहा यह –
रीता क्षण !"[13]

क्या पता यह 'चाँद' कौन है ! किन्तु जो भी हैं, उसका पराग, उसका रंग कवयित्री पर झरता है और उसका घटाटोप उसे भयंकर आवर्त में ढकेल देता है। चाँद भयंकरता से ही उतरता है। फिर भी वह चाँद कवयित्री का, नायिका का अभिन्न है और वह चाँद के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। उसका अपना जो है वह केवल अंधकार है और चाँद उसे उषा की रक्तिमता से स्नात कर देता है।
'बुरा मत मानना' कविता में कवयित्री किसी प्रिय से बुरा नहीं मानने का अनुरोध करती है। उसके जन्म–दिवस पर उसे भूल जाने के कारण वह बुरा न मान जाय, इसी का अनुरोध। यद्यपि जो कुछ भी जीवन का सुख और आलोक प्राप्त हुआ, वह उसी ने दिया था, फिर भी उसी का जन्म दिन याद नहीं रहा। इसलिए तो उससे बुरा नहीं मानने का अनुरोध है। प्रेमी के जन्म–दिवस पर उनको भूल जाने के कारण को वे अन्यथा न मान जाए, उसी का अनुरोध भाव है– इस कविता में। कवयित्री अपना प्रगाढ़ भाव अभिव्यक्त करती हैं –

"प्रिय,
तुम बुरा मत मानना।
मैं भूल गयी थी वह दिन –
यद्यपि मुझे भूलना न था,
तुम्हारा पुनीत जन्म – दिवस।"[14]

कवयित्री को अपने प्रेमी का जन्मोत्सव–दिन भूल जाने का अत्यंत दुख है। वे कहती हैं कि मैं किसी और कल्पना में पागल थी, जबकि मैं जानती हूँ कि कल्पना मात्र उडान भर ही सीमित है। वे कल्पनामय उड़ान को मिथ्या मानती हैं और पश्चाताप करती हैं अपने मधुर संबंध के विस्मरण पर –

"बनी थी पागल किसी और ही कल्पना में
जानती हूँ कल्पना केवल उड़ान ही है !...."[15]

वसन्त के प्रथम आगमन की इन्द्रधनुषी आसमानवाली अर्धरात्री का व्रत–भंग सा भाव है– 'वसन्त' शीर्षक कविता में। वसन्त–रात्रि की दुपहरिया में जब कवयित्री इंद्रधनुषी आसमान को निहारने में निमग्न थीं, उसी क्षण कोयल कूकती है – रेल की सीटी–सी, बन्द जग के जगमगाते वातायन को संभ्रम से चीरती, तन को कँपाती, मन को रिझाती, चिर संचित व्रत की मधुरिया को लीलती फूटी थी– हृदय में उत्स की ऊष्मा और

"असमय ही
गिरे इन्द्रधनुषी आसमान
छिटकी बिजली
और थिरके बादल।"[16]

'समुद्र मंथन' पद में कवयित्री का भाव है कि समुद्र का मंथन कोमल कलाइयों की काँपती उँगलियों से नहीं, अपितु मंदराजल से हुआ था और तभी निकले चौदह रत्न (अमृत) देवों को दानवों की–सी शक्ति अर्जित करनी होगी। लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए, अमरता की प्राप्ति के लिए। कविता के भाव स्पष्ट है –

"सुख के लोभी देव,
दानवों की शक्ति अपनाओ,
तभी मिलेगी –
भुवन मोहिनी रमा,
तभी मिलेगी अमरता !"[17]

'फूटते हैं अंकुर' कवयित्री इलारानी का तीसरा और अन्तिम हिन्दी है। इस काव्य–संग्रह में कुल छत्तीस कविताएँ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि के बाद से ही इला रानी का साहित्य–सृजन से छत्तीस का रिश्ता हो गया। छत्तीसों कविता–संग्रह में 'फूटते हैं अंकुर' आठवें सोपान पर है। प्रथम सोपान 'क्रान्ति' शीर्षक कविता है। क्रान्ति का स्वर सदैव दुर्निवार रोष एवं विवेक–पुष्ट क्षोभ से ही उठता है –

"क्रांति–स्वर
उठेगा क्या तोष से?
नहीं।
शेष से हो दुर्निवार
या विवके–पुष्ट क्षोभ से।"[18]
'

विवेक–पुष्ट' क्षोभ से क्यों ? इसीलिए कि यदि क्षोभ अविवेकी का हो, तो उससे यदि कोई क्रान्ति पैदा होती है तो वह खपरैलों के घरों से होती हुई, मिल–मजदूरों, बस–गाड़ी में कार्यरत कर्मचारियों एंव यात्रियों तथा नन्हें ककहरा सीखने वाले बच्चों तक भी पहुँच जाती है –

"थाना, कचहरी, बस, ट्राम,
अखबार
और बच्चे के ककहरे की कॉपी में।"[19]

'जिन्दगी' शीर्षक कविता में कवयित्री अपने जीवन से हार गई है किन्तु वे इतने कायर नहीं हैं कि आत्मदाह के लिए विवश हो जाए। 'फुटते हैं अंकुर' कविता में वे अपने उत्तप्त हृदय में भी प्याज के समान अंकुर (पेंपी) उगें, ऐसी ही अभिलाषा है –

"धुप्प अंधेरे कमरे में भी
बिना अपेक्षित शर्त्तों के
प्याज के फूटते हैं अंकुर।"[20]

और यह प्याज केवल धुप्प अन्धकार में नहीं, अपितु मिट्टी–पानी से पृथक डलिया में तोता सदृश सूर्य की गरमाहट से अनभिज्ञ महीनों टँगें जीवित है। तो क्या वह अपने अस्तित्व से विमुख हो जाता? कदापि नहीं। कवयित्री का जीवन अज्ञात अभिशाप और विडम्बनाओं से भरा था, फिर भी उनकी जिजीविषा और जीवन–संघर्ष में उदासीनता व अन्यमस्कता नहीं आई –

"जो युग–युग से उपेक्षित
नापाक, फिर बदनाम,
तेज तर्राक दुर्गन्ध–भरा,
नायिका को गहराई रजनी में
करता जो सर्वथा विमुख,
वही, ओज–भरा, शोज भरा
जोश और खरोश–भरा
मचलता हुआ गर्वोन्नत
देता है सीख
जीवन–संर्घष का।"[21]

कवयित्री की अत्यन्त मार्मिक कविता है– 'मरूथल को रिसते देखा'। संवेग समाप्त होने से जो बंजर मरूस्थल बना उसको भी कवयित्री रिसते देखती है। जो कभी उर्वर भूमि थीं उसे सूखकर बाँझ होते देखा और उसी बाँझपन ने दिया एक रेगिस्तान का रूप। उसको भी वह स्वाभिमान और गर्व से सुरक्षित रखना चाहती हैं –

"रौंद कर
ताप को, लू को
बवंडर, अकाल को
प्रलय, महाकाल को
अपनी मंजिलें तय करनी हैं;
गर्व से सिर उठा कर
सिर्फ मरूस्थल बन रहना है।"[22]

अश्रु–जल से सिंचित उस मरूस्थल से फिर एक बार संवेगों का पयास्विनी प्रवाहित हो, ऐसी कामना कवयित्री के हृदय में उल्लसित होती है –

"किन्तु नहीं –
तुम्हारी ललाई आँखों की
फूहियों ने सींचा है जो
शायद कोई संजीवनी
फिर पैदा हो
और जड़त्व टूटे –
सूखे मरूस्थल से
जनमे उर्वर
पयस्विनी कोई सीता।"[23]

कवयित्री की 'कन्या कुमारी' शीर्षक कविता अपूर्ण नारीत्व–बोध की कविता है। हैमवती उमा की–सी प्रतीक्षारत नारी का अपूर्णता का बोध और निष्ठा की पराकाष्ठा बनी नारी का अपूर्णता–बोध –

"कब तक वेष बदल आता ही रहेगा उसका प्रिय ?
कब तक अपने ही प्रिय को न पहचान
निष्ठा की पराकाष्ठा रहेगी कुमारी ?"[24]

संदर्भ सूची

1. वात्या, पृष्ठ संख्या – 24
2. स्मरण को पाथेय बनने दो, पृष्ठ संख्या – 10
3. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या –14
4. जनसत्ता, 14 जनवरी 1996, पृष्ठ संख्या – 26
5. फूटते हैं अँकुर, पृष्ठ संख्या – 41
6. स्मारिका, चेतना समिति, पटना, 1995, पृष्ठ संख्या –25
7. स्मरण को पाथेय बनने दो, पृष्ठ संख्या – 13
8. उपनिषद् – सयि
9. वात्या, पृष्ठ संख्या – 4
10. रीता क्षण
11. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या –23
12. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या –22
13. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या –4
14. बुरा मत मानना, पृष्ठ संख्या –16
15. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या –16
16. वसंत, पृष्ठ संख्या –25
17. समुद्र मंथन, पृष्ठ संख्या –29
18. फूटते हैं अँकुर, पृष्ठ संख्या – 5
19. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या –5
20. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या –13
21. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या – 13, 14
22. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या –15
23. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या –15
24. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या –9।